

रितु छाबरिया

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

(2023 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 60)

26 अप्रैल, 2023

[कृष्ण मुरारी और सी. टी. रविकुमार, न्यायाधीशगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, 167 (2) - डिफॉल्ट जमानत का अधिकार - क्या, एक आरोपपत्र, यदि पहले जांच पूरी किए बिना टुकड़ों में दायर किया जा सकता है और क्या इस तरह के आरोप पत्र दाखिल करने से डिफॉल्ट जमानत देने के लिए आरोपी का अधिकार समाप्त हो हो सकता है। - आयोजित - नहीं - किसी मामले की जांच पूरी किए बिना, एक अन्वेषण एजेंसी द्वारा चार्जशीट या अभियोजन शिकायत केवल एक गिरफ्तार आरोपी को डिफॉल्ट जमानत के अधिकार से वंचित करने के लिए दायर नहीं की जा सकती है अंतर्गत धारा 167 (2) - यदि इस तरह का आरोप पत्र दायर किया जाता है, तो धारा 167 (2) के तहत डिफॉल्ट जमानत के अधिकार को समाप्त नहीं करेगा - ऐसे मामलों में, ट्रायल कोर्ट गिरफ्तार व्यक्ति को डिफॉल्ट जमानत की पेशकश किए बिना अधिकतम निर्धारित समय से अधिक गिरफ्तार व्यक्ति को रिमांड करना जारी नहीं रख सकता है - धारा 167 (2) के तहत डिफॉल्ट जमानत का अधिकार केवल एक वैधानिक अधिकार नहीं है, लेकिन अनुच्छेद 21 - भारत के संविधान से बहने वाला एक मौलिक अधिकार है।

भारत का संविधान - अनुच्छेद 32 - रिट याचिका - पोषणीयता - आयोजित: संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय को व्यक्तियों और बड़े पैमाने पर समाज की नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सौंपा - अनुच्छेद 32 संविधान के भाग III के अंतर्गत आता है जो मौलिक अधिकारों से संबंधित है और इस प्रकार, अनुच्छेद 32 को लागू करने का अधिकार अपने आप में एक मौलिक अधिकार है - धारा 167 (2) सीआरपीसी के तहत वैधानिक जमानत की राहत, संविधान के अनुच्छेद 21 से सीधे बहने वाला एक मौलिक अधिकार है - इस प्रकार, इस तरह के अधिकार का उल्लंघन सीधे अनुच्छेद 32 के तहत विचार को आकर्षित करता है - वर्तमान मामले में, रिट याचिका की पोषणीयता के बारे में प्रत्यार्थी द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को खारिज कर दिया जाता है - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 167 (2)।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 167 (2) - डिफॉल्ट जमानत के प्रावधान का इतिहास - विधि आयोग की रिपोर्ट, सिफारिशें - चर्चा - दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 - धारा 167।

रिट याचिका का निपटारा करते हुए,

अदालत ने कहा: 1.1 सीआरपीसी की धारा 167 (2) के तहत वैधानिक जमानत की राहत भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से सीधे बहने वाला एक मौलिक अधिकार है, और इस तरह के अधिकार का उल्लंघन सीधे संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत विचार को आकर्षित करता है। संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस याचिका की विचारणीयता के बारे में प्रतिवादी द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों को खारिज कर दिया गया है। [पैरा 14] [834-बी-सी]

1.2 सीआरपीसी की धारा 167 (2) को यह सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया था कि अन्वेषण एजेंसी निर्धारित समय सीमा के भीतर जांच पूरी करती है, जिसमें विफल रहने पर किसी भी अभियुक्त को अभिरक्षा में नहीं रखा जा सकता है यदि वे जमानत का लाभ उठाने के इच्छुक हैं। [पैरा 21] [839-ए-बी]

भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट संख्या 14, खंड-I (1958);

विधि आयोग की रिपोर्ट संख्या 41 (सितंबर, 1969), पैरा 14.19 - संदर्भित। एम. रवींद्रन वी. खुफिया अधिकारी, राजस्व खुफिया निदेशालय (2021) 2 एससीसी 485; सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई और आंध्र प्रदेश (2021) 10 एससीसी 773 - पर भरोसा किया।

1.3 हालांकि, वैधानिक जमानत का अधिकार समाप्त हो जाता है, यदि निर्धारित अवधि के भीतर आरोप पत्र दायर किया जाता है। सीआरपीसी की धारा 173 (8) के तहत पूरक आरोप पत्र का सहारा लेने का सवाल मुख्य आरोप पत्र दायर होने के बाद ही उठता है, और इस तरह, एक पूरक आरोपपत्र, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जांच अभी भी लंबित है, किसी भी परिस्थिति में डिफॉल्ट जमानत के अधिकार को बाधित करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। डिफॉल्ट जमानत का पूरा उद्देश्य विफल हो जाता है, और चार्जशीट या पूरक चार्जशीट दाखिल करना केवल एक औपचारिकता और एक उपकरण बन जाता है, ताकि डिफॉल्ट जमानत के अधिकार को खत्म किया जा सके। पहले जांच पूरी की जानी है, और उसके बाद ही निर्धारित अवधि के भीतर चार्जशीट या शिकायत दायर की जा सकती है, और ऐसा करने में विफल रहने पर सीआरपीसी की धारा 167 (2) के तहत डिफॉल्ट जमानत का वैधानिक अधिकार शुरू हो जाएगा। (पैरा 24 और 25। 840-जी-एच; 841-ए-बी।)

यूनियन ऑफ इंडिया बनाम थमीसरआसी और अन्य (1995) 4 एससीसी 190: [1995] 3 एससीआर 905; अशोक मुनिलाल जैन और अन्य बनाम सहायक निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय (2018) 16 एससीसी 158 - पर भरोसा किया गया।

1.4 किसी मामले की जांच पूरी किए बिना, एक जांच एजेंसी द्वारा चार्जशीट या अभियोजन शिकायत केवल सीआरपीसी की धारा 167 (2) के तहत एक गिरफ्तार आरोपी को डिफॉल्ट जमानत के अधिकार से वंचित करने के लिए दायर नहीं की जा सकती है। इस तरह का आरोपपत्र, अगर जांच पूरी किए बिना एक जांच प्राधिकरण द्वारा दायर किया जाता है, तो सीआरपीसी की धारा 167 (2) के तहत डिफॉल्ट जमानत के अधिकार को समाप्त नहीं करेगा। ऐसे मामलों में विचारण न्यायालय गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत दिए

बिना अधिकतम निर्धारित समय से अधिक समय तक रिमांड पर नहीं रख सकती। [पैरा 32]
[842-ई-जी]

1.5 इस मामले में, जांच के लंबित रहने के दौरान, जांच एजेंसी द्वारा 60 दिनों की समाप्ति से ठीक पहले पूरक आरोप पत्र दायर किए गए थे, जिसका उद्देश्य अभियुक्त के पक्ष में अर्जित डिफॉल्ट जमानत के अधिकार को समाप्त करना था। इस तथ्यात्मक स्थिति को विचारण न्यायालय ने अनदेखी कर दिया तथा आरोपी को डिफॉल्ट जमानत देने के बजाय, द्रायल कोर्ट ने यांत्रिक रूप से जांच एजेंसी द्वारा दायर अपूर्ण चार्जशीट को स्वीकार कर लिया, और निर्दिष्ट अधिकतम अवधि से परे आरोपी की रिमांड जारी रखी। इस प्रकार, जांच एजेंसी और द्रायल कोर्ट विधि के आज्ञापक आदेश का पालन करने में विफल रहे, और इस तरह से काम किया जो स्पष्ट रूप से मनमाना था और अभियुक्त को प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन था। अभियुक्त के पक्ष में पारित जमानत के अंतरिम आदेश को निरपेक्ष बनाया जाता है। [पैरा 33 और 35] [843-ए-सी; 843-एफ]

केएस पुट्टास्वामी और अनर v. भारत संघ और अन्य। (2017) 10 एससीसी 1: [2017] 10 एससीआर 569; के. के. कोचुन्नी, मोपिल नायर बनाम वी. मद्रास और अन्य [1959] 2 सपल एससीआर 316।

पश्चिम बंगाल राज्य बनाम सालप सर्विस स्टेशन और अन्य (1994) 3 सुप एससीसी 318; धरम पाल बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2016) 4 एससीसी 160: [2016] 1 एससीआर 194; राम नारायण पोपली बनाम सीबीआई (2003) 3 एससीसी 641: [2003] 1 एससीआर 119; राजेश रंजन यादव बनाम सीबीआई (2007) 1 एससीसी 70: [2006] 9 सपल एससीआर 40 - प्रतिष्ठित।

बिहार राज्य और अन्य बनाम जेएसी सलदान्हा और अन्य (1980) 1 एससीसी 554: [1980] 2 एससीआर 16 - संदर्भित।

केस लॉ रेफरेंस

[1980] 2 एससीआर 16	रेफर्ड टू	पैरा 8 (II)
[2017] 10 एससीआर 569	के बाद	पैरा 12
[1959] 2 सुप एससीआर 316	के बाद	पैरा 13
[1995] 3 एससीआर 905	निर्भर किया गया है	पैरा 25
(2016) 1 एससीआर 194	प्रतिष्ठित	पैरा 30
(2003) 1 एससीआर 119	प्रतिष्ठित	पैरा 30

2023 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 60।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत याचिकाकर्ता के लिए डॉ सुजय कांतावाला, संतोष सचिन, वकील।

उत्तरदाताओं के लिए एएसजी के एम नटराज, सुश्री इंदिरा भाकर, वत्सल जोशी, विनायक शर्मा, बी के सतीजा, प्रत्यूष श्रीवास्तव, अरविन्द कुमार शर्मा, वकील।

कोर्ट का निर्णय सुनाया गया - द्वारा

न्यायाधीश कृष्ण मुरारी

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत वर्तमान रिट याचिका रिट याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई है, जिसमें अपने पति को डिफॉल्ट जमानत पर रिहा करने की मांग की गई है। रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित व्यक्तिगत स्वतंत्रता के गंभीर महत्व का मुद्दा भी उठाती है।

तथ्य

2. संक्षेप में, वर्तमान रिट याचिका से संबंधित तथ्य यह है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में, 'आईपीसी') की धारा 7, 12 और धारा 420 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 120 (बी) के तहत एक एफआईआर दर्ज की गई थी। 13(2) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(डी) के साथ पढ़ा जाए, जिसमें रिट याचिकाकर्ता के पति का नाम नहीं था।

3. इसके बाद, दो पूरक आरोप पत्र दायर किए गए, जिसमें रिट याचिकाकर्ता के पति (बाद में "अभियुक्त" के रूप में संदर्भित) को पूरक आरोप पत्र दिनांक 26.05.2020 में अभियोजन गवाह बनाया गया था। बाद में कई अन्य पूरक आरोपपत्र दायर किए गए, और उक्त किसी भी आरोपपत्र में आरोपी का नाम नहीं था।

4. फिर जांच दूसरे जांच अधिकारी को स्थानांतरित कर दी गई, और आरोपी को फिर सीबीआई ने गिरफ्तार कर लिया और 28.04.2022 को हिरासत में भेज दिया गया। इसके बाद कई अन्य पूरक आरोप पत्र दायर किए गए, जिसमें आरोपी को एक संदिग्ध के रूप में नामित किया गया था, और आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में, 'सीआरपीसी') की धारा 309 (2) के तहत आरोपी की रिमांड को नवीनीकृत किया गया था। और इसे समय-समय पर जारी रखा गया, और उन्हें कभी भी डिफॉल्ट जमानत पर रिहा नहीं किया गया।

5. इसके बाद, आईए संख्या 37424/2023 के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में जमानत मांगने के लिए अतिरिक्त आधार और प्रार्थनाओं को शामिल करने की मांग की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 20.02.2023 के आदेश के तहत अनुमति दी और अंतरिम जमानत दे दी गई।

6. यह हिरासत की निरंतरता के खिलाफ है, और डिफॉल्ट जमानत की राहत को रोकने के लिए, याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट दायर की है। रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, दायर की गई प्रत्येक पूरक चार्जशीट यह सुनिश्चित करने का एक प्रयास है कि उसके पति को डिफॉल्ट जमानत पर रखा नहीं किया जाए।

याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए तर्क

7. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि:

I. प्रत्यार्थी ने पूरक आरोप पत्र में लिखित रूप में स्वीकार किया है कि अन्वेषण अभी भी लंबित है, और उसी के आलोक में ट्रायल कोर्ट को प्रक्रिया जारी नहीं करनी चाहिए थी और याचिकाकर्ता के पति को रिमांड पर नहीं लेना चाहिए था सीआरपीसी की धारा 309 के तहत.

II. अन्वेषण पूरी न होने के आधार पर हिरासत में जारी रखने से आरोपी के मौलिक अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। यह तर्क दिया गया कि यदि जांच अभी भी जारी है तो सीआरपीसी के प्रावधान 60 दिनों से अधिक समय तक हिरासत में रखने का अधिकार नहीं देते हैं। इसके लिए, विद्वान वकील ने एम. रवींदरन बनाम खुफिया अधिकारी, राजस्व खुफिया निदेशालय के मामले में फैसले पर भरोसा किया।

प्रतिवादी द्वारा दिए गए तर्क

8. प्रत्यार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने तर्क दिया कि:

I. वर्तमान रिट पोषणीय योग्य नहीं है, और जमानत देने के लिए, आरोपी को या तो डिफॉल्ट जमानत से इनकार करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाना चाहिए था या भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के प्रावधानों को लागू करते हुए उक्त आदेश के खिलाफ एक विशेष अनुमति याचिका दायर की।

II. याचिकाकर्ता का यह तर्क कि एफआईआर में आरोपी का नाम नहीं है, प्रासंगिक दलील नहीं है, क्योंकि एफआईआर एक संपूर्ण दस्तावेज नहीं है, और आपराधिक प्रक्रिया को गति देने के लिए केवल पहला कदम है। तर्क का समर्थन करने के लिए, विद्वान वकील ने बिहार राज्य और अन्य बनाम जेएसी सलदान्हा एवं अन्यⁱⁱ के मामले पर भरोसा किया।

III. 25.06.2022 को दायर पूरक आरोप पत्र उक्त पूरक आरोप पत्र में आरोपित व्यक्तियों द्वारा किए गए अपराध के संबंध में एक संपूर्ण दस्तावेज है, इसलिए याचिकाकर्ता के पति के पक्ष में डिफॉल्ट जमानत का कोई अधिकार नहीं बनता है।

प्रश्न

9. पक्षों के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए उपर्युक्त तर्कों के आलोक में, निम्नलिखित तीन प्रश्न हमारे विचार के लिए उठते हैं: -

- I. क्या मामले की जांच पूरी किए बिना आरोप पत्र या अभियोजन शिकायत टुकड़ों में दायर की जा सकती है?
- II. क्या जांच पूरी किए बिना ऐसी चार्जशीट दाखिल करने से आरोपी को डिफॉल्ट जमानत देने का अधिकार खत्म हो जाएगा?
- III. क्या सीआरपीसी द्वारा निर्धारित निर्धारित समय से परे जांच लंबित रहने के दौरान ट्रायल कोर्ट द्वारा किसी आरोपी की रिमांड जारी रखी जा सकती है?

प्रारंभिक आपत्ति

10. प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है जिसमें कहा गया है कि वर्तमान रिट इस आधार पर इस अदालत के समक्ष विचारणीय नहीं है कि जांच के इतने प्रारंभिक चरण में कोई राहत नहीं दी जा सकती है।

11. हमने प्रारंभिक आपत्ति पर विचार किया है, तथापि, हम इससे सहमत नहीं हैं। यह याद रखना चाहिए कि हमारे संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय को व्यक्तियों और बड़े पैमाने पर समाज की नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सौंपा है। ये नागरिक स्वतंत्रताएं, जो खुद को मौलिक अधिकारों के रूप में प्रकट करती हैं, वे हैं जो इस देश के लोगों को राज्य के साथ प्रभावी ढंग से बातचीत करने और लोगों और राज्य के बीच सामाजिक अनुबंध में सत्ता में समानता बनाए रखने की अनुमति देती हैं। यदि यह न्यायालय मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामलों में तकनीकी पहलुओं पर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार करता है, तो इससे एक गंभीर प्रभाव पड़ेगा जिसके परिणामस्वरूप एक निष्क्रिय सामाजिक अनुबंध होगा, जिसमें इस देश के लोग राज्य के मनमाने और निरंकुश अत्याचार के अधीन हो जाएंगे।

12. भारत के संविधान का अनुच्छेद 32 इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को लागू करने के लिए उपाय प्रदान करता है। उक्त अनुच्छेद इस प्रकार है:-

“32. इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को लागू कराने के उपाय—(1) इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को लागू कराने के लिए उचित कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार सुनिश्चित किया गया है।

(2) सर्वोच्च न्यायालय के पास प्रदत्त अधिकारों में से किसी के प्रवर्तन के लिए निर्देश या आदेश या रिट जारी करने की शक्ति होगी, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, यथा वारंटो और सर्टिओरारी की प्रकृति की रिट, जो भी उचित हो, शामिल हैं। यह भाग।

(3) खंड (1) और (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संसद कानून द्वारा किसी अन्य न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर सर्वोच्च द्वारा प्रयोग की जाने वाली सभी या किसी भी शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार दे सकती है। खंड (2) के तहत न्यायालय।

(4) इस अनुच्छेद द्वारा गारंटीकृत अधिकार को इस संविधान द्वारा अन्यथा प्रदान किए जाने के अलावा निलंबित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 32 संविधान के भाग III के अंतर्गत आता है जो मौलिक अधिकारों से संबंधित है और इस प्रकार अनुच्छेद 32 को लागू करने का अधिकार अपने आप में एक मौलिक अधिकार है, जो संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत अन्य मौलिक अधिकारों की रक्षा और सुरक्षा के लिए मौजूद है। हम केएस पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ एवं अन्यⁱⁱⁱ के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ की निम्नलिखित टिप्पणियों का उपयोगी उल्लेख कर सकते हैं :-

“एक संवैधानिक लोकतंत्र तब जीवित रह सकता है जब नागरिकों को यह आश्वासन मिले कि कानून का शासन राज्य द्वारा किसी भी आक्रमण के खिलाफ उनके अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करेगा और जब कोई नागरिक वंचित हो जाता है तो खोजपूर्ण प्रश्न पूछने और उत्तर की उम्मीद करने के लिए न्यायिक उपाय उपलब्ध होंगे। ये, सबसे कीमती अधिकार।”

13. इसके अलावा, केके कोचुन्नी, मूपिल नायर बनाम मदरास राज्य और अन्य^{iv} के मामले में इस न्यायालय की एक और संविधान पीठ ने 1959 में ही कहा था कि न्यायालय को उन मामलों में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए जहां मौलिक अधिकारों का दुरुपयोग हो। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे निकाले जा रहे हैं:

“इसके अलावा, भले ही अन्य पर्याप्त कानूनी उपाय के अस्तित्व को उच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय लेने में ध्यान में रखा जा सकता है कि क्या उसे आवेदन पर कोई विशेषाधिकार रिट जारी करनी चाहिए या नहीं - संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उद्घरण, जिसके बारे में हम अब कुछ नहीं कहते हैं - यह न्यायालय, समान आधार पर, अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उचित कार्यवाही द्वारा इस न्यायालय को स्थानांतरित करने के अधिकार के लिए अनुच्छेद 32 के तहत एक याचिका पर विचार करने से इनकार नहीं कर सकता है। संविधान के भाग I द्वारा प्रदत्त अधिकार स्वयं एक गारंटीशुदा अधिकार है। तदनुसार इस न्यायालय द्वारा रोमेश थापर बनाम मदरास राज्य [1950 एससीसी 436 1950 एससीआर 594] में यह माना गया है कि संविधान के तहत इस न्यायालय को मौलिक अधिकारों का रक्षक और गारंटर माना जाता है और यह इस प्रकार दी गई जिम्मेदारी के अनुरूप नहीं हो सकता है। यह, ऐसे अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ इस न्यायालय की सुरक्षा की मांग करने वाले आवेदनों पर विचार करने से इंकार कर देता है, हालांकि ऐसे आवेदन इस मामले में समवर्ती क्षेत्राधिकार वाले उच्च न्यायालय का सहारा लिए बिना पहली बार में इस न्यायालय में किए जाते हैं। एक पर्याप्त वैकल्पिक कानूनी उपाय का अस्तित्व ही अनुच्छेद 32 के तहत किसी याचिका को खारिज करने के लिए एक अच्छा और

पर्याप्त आधार नहीं हो सकता है, यदि मौलिक अधिकार का अस्तित्व और ऐसे अधिकार का उल्लंघन, वास्तविक या धमकी भरा आरोप लगाया गया है और प्रथम दृष्टया है याचिका पर प्रथम दृष्टया स्थापित किया गया।"

14. यह भी ध्यान रखना उचित है कि सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत वैधानिक जमानत की राहत, हमारी राय में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से सीधे तौर पर मिलने वाला एक मौलिक अधिकार है, और इसका उल्लंघन है एक अधिकार, जैसा कि ऊपर बताया गया है, सीधे संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत विचार को आकर्षित करता है। ऐसी परिस्थिति में, हम संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस याचिका की विचारणीयता के संबंध में प्रतिवादी के विद्वान वकील द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों से सहमत होने के इच्छुक नहीं हैं और इसलिए उक्त आपत्ति खारिज कर दी गई है।

विश्लेषण

15. तय किए गए मुद्दों से निपटने से पहले, हमें यह उल्लेख करना उचित लगता है कि वर्तमान मामले में, यह न्यायालय मामले की योग्यताओं से निपट नहीं रहा है और इस प्रकार इसके संबंध में कोई टिप्पणी करने के इच्छुक नहीं है। प्रत्येक न्यायालय को, जब अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए बुलाया जाता है, तो उसे मांगी गई राहत के प्रति सचेत रहना चाहिए, और ऐसी राहत तक सीमित मंच के रूप में कार्य करना चाहिए। वर्तमान मामले में, यह न्यायालय अपील की अदालत नहीं है, बल्कि रिट की अदालत है, और इसलिए अपने अधिकार क्षेत्र को केवल रिट याचिकाकर्ता के पति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और कानून के विवादित बिंदुओं तक सीमित करने के लिए इच्छुक है।

16. हमारे द्वारा तय किए गए मुद्दों पर निर्णय लेने के लिए, हम डिफॉल्ट जमानत के प्रावधान के इतिहास और उन कारणों का पता लगाना उचित समझते हैं जिनके कारण विधायिका को मौजूदा प्रावधानों को नए कानून में शामिल करना पड़ा। दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 167 के तहत, जो वर्तमान में लागू सीआरपीसी के अधिनियमन से पहले आपराधिक प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाला अधिनियम था, एक आरोपी, जो न्यायिक या पुलिस हिरासत के तहत था, को केवल अधिकतम 15 दिनों की अवधि के लिए रिमांड पर लिया जा सकता था। त्वरित संदर्भ के लिए 1898 संहिता की धारा 167 को यहां पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"ऐसी प्रक्रिया जब जांच चौबीस घंटे में पूरी नहीं हो सकती। - (1) जब भी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और हिरासत में रखा जाता है, और ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 61 द्वारा निर्धारित चौबीस घंटे की अवधि के भीतर जांच पूरी नहीं की जा सकती है, और यह मानने के लिए आधार हैं कि आरोप या जानकारी ठीक है- स्थापित, पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी या पुलिस स्टेशन का प्रभारी पुलिस अधिकारी या जांच करने वाला पुलिस अधिकारी यदि वह उप-निरीक्षक के पद से नीचे नहीं है, तो वह तुरंत निकटतम मजिस्ट्रेट को प्रविष्टियों की एक प्रति भेजेगा। मामले से संबंधित इसके बाद निर्धारित डायरी में, और उसी समय आरोपी को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेज देगा।

(2) जिस मजिस्ट्रेट के पास आरोपी व्यक्ति को इस धारा के तहत भेजा जाता है, वह, चाहे उसके पास मामले की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र हो या न हो, समय-समय पर आरोपी को ऐसी हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है, जैसा मजिस्ट्रेट उचित समझे। अवधि कुल मिलाकर पन्द्रह दिन से अधिक नहीं। यदि उसके पास मामले की सुनवाई करने या उसे सुनवाई के लिए सौंपने का अधिकार क्षेत्र नहीं है, और वह आगे की हिरासत को अनावश्यक मानता है, तो वह आरोपी को ऐसे अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजने का आदेश दे सकता है: बशर्ते कि कोई तृतीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट न हो, और न ही तृतीय वर्ग का कोई मजिस्ट्रेट हो। राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त नहीं किया गया दूसरा वर्ग पुलिस की हिरासत में हिरासत को अधिकृत करेगा।

(3) इस धारा के तहत पुलिस की हिरासत में हिरासत को अधिकृत करने वाला मजिस्ट्रेट ऐसा करने के अपने कारणों को दर्ज करेगा।

(4) यदि ऐसा आदेश जिला मजिस्ट्रेट या उप-विभागीय मजिस्ट्रेट के अलावा किसी अन्य मजिस्ट्रेट द्वारा दिया जाता है, तो वह अपने आदेश की एक प्रति, इसे बनाने के कारणों के साथ, उस मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करेगा जिसके वह तुरंत अधीनस्थ है।

17. हालाँकि, 15 दिनों की यह अवधि, अधिकांशतः, जाँच को समाप्त करने के लिए अपर्याप्त थी, विशेष रूप से जटिल मामलों में जिनमें लंबी और गहरी जाँच की आवश्यकता होती थी। 1898 अधिनियम के उपर्युक्त प्रावधान के कारण समय की कमी के कारण एक व्यापक प्रथा शुरू हुई जिसमें जांच अधिकारी रिमांड अवधि समाप्त होने के बाद प्रारंभिक आरोपपत्र दायर करते थे, और बाद में मजिस्ट्रेट से मुकदमे की शुरुआत को स्थगित करने और आरोपी को रिमांड पर लेने का अनुरोध करते थे। 1898 अधिनियम की धारा 344 के तहत अंतिम आरोप पत्र दायर होने तक अतिरिक्त समय के लिए।

18. प्रारंभिक आरोप पत्र दाखिल करने की इस प्रथा को सबसे पहले भारत के विधि आयोग ने न्यायिक प्रशासन के सुधारों पर अपनी रिपोर्ट संख्या 14^{vi} में इंगित किया था, जिसमें यह कहा गया था कि कई मामलों में, आरोपी व्यक्ति, बिना कोई आरोप पत्र दाखिल किए जांच प्राधिकारी द्वारा अदालतों के समक्ष विस्तृत रिपोर्टें लंबे समय तक जेल में पड़ी रहीं। इस प्रकार यह सिफारिश की गई कि ऐसे प्रावधान की तत्काल आवश्यकता है जो आरोपी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए जांच को पूरा करने के लिए उचित समय सीमा प्रदान करे।

19. उपरोक्त विधि आयोग की रिपोर्ट द्वारा की गई इन सिफारिशों पर विधि आयोग ने अपनी रिपोर्ट संख्या 41^{vi} में फिर से जोर दिया था, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि धारा 344 1898 अधिनियम के तहत के दुरुपयोग के खिलाफ आरोपी व्यक्तियों की नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करने की तत्काल आवश्यकता थी, जिसमें आरोपी व्यक्तियों को, प्रारंभिक रिपोर्ट और लंबित जांच के आधार पर, अनिश्चित काल तक हिरासत में भेज दिया गया था। उक्त रिपोर्ट के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किए जा रहे हैं: -

धारा 167 रिमांड का प्रावधान करती है। किसी गिरफ्तार व्यक्ति को पुलिस या न्यायिक हिरासत में भेजे जाने की कुल अवधि 15 दिन है। धारणा यह है कि जांच 15 दिनों के भीतर पूरी होनी चाहिए और धारा 173 के तहत अंतिम रिपोर्ट तब तक अदालत को भेज दी जानी चाहिए। हालाँकि, वास्तविक व्यवहार में, यह अक्सर अव्यवहारिक पाया गया है। अक्सर, एक जटिल जांच 15 दिनों के भीतर पूरी नहीं की जा सकती है, और यदि अपराध गंभीर है, तो पुलिस स्वाभाविक रूप से इस बात पर जोर देती है कि आरोपी को हिरासत में रखा जाए। इसलिए संदिग्ध कानूनी वैधता का चलन बढ़ गया है। पुलिस मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रारंभिक या "अधूरी" रिपोर्ट दाखिल करती है, और मजिस्ट्रेट, धारा 344 के तहत कार्रवाई करने का इरादा रखते हुए, कार्यवाही स्थगित कर देता है और आरोपी को हिरासत में भेज देता है। चौदहवीं रिपोर्ट में, विधि आयोग को संदेह था कि क्या धारा 344 के तहत ऐसा आदेश दिया जा सकता है, क्योंकि उस धारा का उद्देश्य मजिस्ट्रेट द्वारा किसी अपराध का संज्ञान लेने के बाद ही लागू होना है, जो कि धारा के तहत अंतिम रिपोर्ट के बाद ही ठीक से किया जा सकता है। 173 प्राप्त हो गया है, न कि तब जबकि जांच अभी भी जारी है। हमारा भी यही मानना है और हमें भी यही उचित लगता है कि इस संबंध में कानून को स्पष्ट किया जाना चाहिए। धारा 167 के तहत निर्धारित वैधानिक अवधि से परे रिमांड के लिए धारा 344 का उपयोग गंभीर दुरुपयोग का कारण बन सकता है, क्योंकि इस तरह से गिरफ्तार व्यक्ति को अनिश्चित काल तक हिरासत में रखा जा सकता है जबकि जांच इत्मीनान से चल सकती है। इसलिए, यह वांछनीय है, जैसा कि चौदहवीं रिपोर्ट में देखा गया था कि रिमांड प्राप्त करने के लिए पुलिस की शक्ति पर कुछ समय सीमा लगाई जानी चाहिए, जबकि जांच अभी भी चल रही है; और यदि 15 दिनों की वर्तमान समय सीमा है बहुत कम, कानूनी सुरक्षा की भावना का उल्लंघन करने वाली प्रथा का समर्थन करने के बजाय लंबी अवधि तय करना बेहतर होगा। पहले के विधि आयोग की तरह, हमें लगता है कि 15 दिन शायद बहुत कम हैं और इसलिए हम चौदहवीं रिपोर्ट की सिफारिश का पालन करने का प्रस्ताव करते हैं कि धारा 167 के तहत अधिकतम अवधि 60 दिन तय की जानी चाहिए। हम इस खतरे से अवगत हैं कि इस तरह के विस्तार के परिणामस्वरूप प्रत्येक मामले में अधिकतम अवधि एक नियमित मामला बन सकती है; लेकिन हमें विश्वास है कि वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा उचित पर्यवेक्षण इसे रोक देगा। हम तदनुसार धारा 167 की उप-धाराओं (2) और (4) को निम्नानुसार संशोधित करने का प्रस्ताव करते हैं: -

"(2) जिस मजिस्ट्रेट के पास इस धारा के तहत एक आरोपी व्यक्ति को भेजा जाता है, वह, चाहे उसके पास मामले की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र हो या न हो, समय-समय पर आरोपी को ऐसी हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है, जैसा कि मजिस्ट्रेट उचित समझे, क्योंकि एक समय में पंद्रह दिन और कुल मिलाकर साठ दिन से अधिक की अवधि नहीं। यदि उसके पास मामले की सुनवाई करने या उसे सुनवाई के लिए सौंपने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, और आगे की हिरासत को अनावश्यक मानता है, तो वह आरोपी को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजने का आदेश दे सकता है जिस कि क्षेत्राधिकार हो, बशर्ते कि-

(ए) कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के तहत किसी भी हिरासत में हिरासत को अधिकृत नहीं करेगा जब तक कि आरोपी को उसके सामने पेश नहीं किया जाता है;

(बी) द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट जो उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त नहीं है, पुलिस की हिरासत में हिरासत को अधिकृत नहीं करेगा।

(4) ऐसा आदेश देने वाले मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के अलावा कोई भी मजिस्ट्रेट अपने आदेश की एक प्रति, इसे बनाने के अपने कारणों के साथ, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजेगा।

20. ऐसी शक्ति के दुरुपयोग को कम करने की सिफारिश करने वाली उपरोक्त रिपोर्टों के माध्यम से विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिश पर, धारा 167(2) जैसा कि आज कानून में मौजूद है, को सीआरपीसी, 1973 में शामिल किया गया था, जो एक लंबी अवधि का प्रावधान करता है। अधिकतम रिमांड की अवधि, लेकिन डिफॉल्ट जमानत की भी गारंटी देता है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आरोपी व्यक्ति मनमानी हिरासत से मुक्त हैं।^{iv} सीआरपीसी, 1973 के उद्देश्यों और कारणों का विवरण. 41 वें विधि आयोग की रिपोर्ट का भी संदर्भ लें और अन्य बातों के साथ-साथ यह इस प्रकार है:-

"(2)... संहिता के संशोधन के लिए एक व्यापक रिपोर्ट, अर्थात्, इकतालीसवीं रिपोर्ट, सितंबर, 1969 में विधि आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई थी। इस रिपोर्ट में पिछले वर्ष में की गई सिफारिशों को ध्यान में रखा गया था। विशिष्ट मामलों से संबंधित आयोग की रिपोर्ट, अर्थात् चौदहवीं, पच्चीसवीं, बत्तीसवीं, तैंतीसवीं, छत्तीसवीं, सैंतीसवीं और चालीसवीं रिपोर्ट।

(3) आयोग की सिफारिशों की सरकार द्वारा अन्य बातों के अलावा, निम्नलिखित बुनियादी बातों को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक जांच की गई-

(i) किसी आरोपी व्यक्ति को प्राकृतिक न्याय के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार निष्पक्ष सुनवाई मिलनी चाहिए;

(ii) जांच और मुकदमे में देरी से बचने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए जो न केवल शामिल व्यक्तियों के लिए बल्कि समाज के लिए भी हानिकारक है; और

(iii) प्रक्रिया जटिल नहीं होनी चाहिए और जहां तक संभव हो, समुदाय के गरीब वर्गों के लिए उचित सौदा सुनिश्चित करना चाहिए।

जांच के व्यावहारिक अनुभव और आपराधिक अदालतों के कामकाज के आधार पर, अन्य क्षेत्रों से प्राप्त उचित सुझावों पर विचार करने और अपनाने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया गया है।

21. उपरोक्त कथनों के अवलोकन से दृढ़ता से संकेत मिलता है कि सीआरपीसी की धारा 167(2) यह सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई थी कि जांच एजेंसी निर्धारित समय सीमा के भीतर जांच पूरी कर ले, ऐसा न करने पर किसी भी आरोपी को हिरासत में नहीं लिया जा सकता है, वह अगर जमानत लेने को तैयार है। एम. रवीन्द्रन बनाम राजस्व खुफिया निदेशालय (सुप्रा) के मामले

में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा भी इस स्थिति पर जोर दिया गया था। उसी के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां पुनः प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

“रिपोर्ट संख्या 14 में दिए गए सुझाव को विधि आयोग द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (खंड I, 1969, पृ. 76-77) पर रिपोर्ट संख्या 41 में दोहराया गया था। विधि आयोग ने धारा 167 के तहत निर्धारित वैधानिक अवधि से परे आरोपी को रिमांड पर लेने के लिए “प्रारंभिक रिपोर्ट” दर्ज करके 1898 संहिता की धारा 344 के दुरुपयोग से बचाव की आवश्यकता पर फिर से जोर दिया। यह बताया गया कि इससे गंभीर दुरुपयोग हो सकता है जिसमें “गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इस तरह से अनिश्चित काल तक हिरासत में रखा जा सकता है जबकि जांच इतनीना से चल सकती है”। इसलिए आयोग ने रिमांड के लिए अधिकतम 60 दिनों की समय-सीमा तय करने की सिफारिश की।

यह इस पृष्ठभूमि में था कि वर्तमान सीआरपीसी के भीतर धारा 167 (2) अधिनियमित की गई थी, जिसमें अपराध की गंभीरता के अनुपात में आरोपी की रिमांड की अवधि पर समय-सीमा प्रदान की गई थी, जिसमें असफल होने पर आरोपी को अपरिहार्य अधिकार प्राप्त हो जाता है। जमानत।”

22. इसके अलावा, इस कानूनी स्थिति को सतेंदर कुमार अंतिल बनाम सीबीआई और अन्य^{iv} में फिर से दोहराया गया था, जिसमें यह माना गया था कि सीआरपीसी की धारा 167(2) भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का एक अंग है, और जैसा कि ऐसे में, जांच प्राधिकारी का संवैधानिक कर्तव्य है कि वह निर्धारित समय के भीतर जांच की प्रक्रिया में तेजी लाए, ऐसा न करने पर आरोपी डिफॉल्ट जमानत पर रिहा होने का हकदार है। उक्त निर्णय में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

“ धारा 167(2) वर्ष 1978 में पेश की गई थी, जिसमें जांच पूरी करने के लिए अधिकतम समयावधि पर जोर दिया गया था। इस प्रावधान के पीछे एक प्रशंसनीय उद्देश्य है, जो एक त्वरित जांच और निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना है, और एक तर्कसंगत प्रक्रिया स्थापित करना है जो समाज के गरीब वर्गों के हितों की रक्षा करती है। यह भी अनुच्छेद 21 का एक अन्य अंग है। इस प्रावधान में निर्दोषता की धारणा भी अंतर्निहित है। एक जांच एजेंसी को जांच की प्रक्रिया में तेजी लानी होगी क्योंकि एक संदिग्ध कारावास की सजा काट रहा है। इस प्रकार, निर्धारित समय के भीतर जांच पूरी करने का कर्तव्य एजेंसी पर लगाया गया है और विफलता पर आरोपी को रिहा किया जा सकेगा। निहित अधिकार पूर्ण और अपरिहार्य है, जो संदिग्ध के लाभ को सुनिश्चित करता है।

उक्त प्रावधान से प्राप्त अधिकार के परिणामस्वरूप, अदालतों को इसे उचित प्रभाव देना होगा, और इस प्रकार इस अवधि से परे कोई भी हिरासत निश्चित रूप से अवैध होगी, जो संबंधित व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपमान है। इसलिए, यह न केवल जांच एजेंसी का बल्कि अदालतों का भी कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करें कि आरोपी को धारा 167(2) का लाभ मिले।

23. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि सीआरपीसी की योजना के अनुसार, किसी संज्ञेय मामले की जांच सीआरपीसी की धारा 154 के तहत एफआईआर दर्ज करने के साथ

शुरू होती है। यदि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और मामले की जांच 24 घंटे के भीतर पूरी नहीं की जा सकती है, तो उसे जारी जांच के दौरान सीआरपीसी की धारा 167 (2) के तहत रिमांड मांगने के लिए मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना होगा। जांच के प्रयोजनों के लिए आरोपी की रिमांड के लिए एक वैधानिक समय सीमा निर्धारित है, हालांकि, इसे 90 दिनों से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है, मौत, आजीवन कारावास या कम से कम 10 साल के मामलों में जैसा कि धारा 167 (2) (ए) (i) के तहत प्रदान किया गया है। ऐसे मामलों में जहां जांच किसी अन्य अपराध से संबंधित है, धारा 167(2)(ए)(ii) के तहत 60 दिन की अवधि से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है। संबंधित धारा में यह भी प्रावधान है कि 90 दिन या 60 दिन की अवधि की समाप्ति पर, जैसा भी मामला हो, आरोपी को डिफॉल्ट जमानत पर रिहा होने का अधिकार है, यदि वह जमानत के लिए तैयार है और प्रस्तुत करता है।

24. हालांकि, यदि निर्धारित अवधि के भीतर आरोप पत्र दायर किया जाता है, तो वैधानिक जमानत का यह अधिकार समाप्त हो जाता है। सीआरपीसी की धारा 173(8) के तहत पूरक आरोपपत्र का सहारा लेने का सवाल मुख्य आरोपपत्र दाखिल होने के बाद ही उठता है, और इस तरह, एक पूरक आरोपपत्र, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जांच अभी भी लंबित है, किसी भी परिस्थिति में, डिफॉल्ट जमानत के अधिकार को खत्म करने के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि तब, डिफॉल्ट जमानत का पूरा उद्देश्य विफल हो जाता है, और आरोप पत्र या पूरक आरोप पत्र दाखिल करना महज एक औपचारिकता और एक उपकरण बन जाता है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि डिफॉल्ट जमानत का अधिकार खत्म कर दिया गया है।

25. इस प्रकार यह स्वयंसिद्ध है कि पहले जांच पूरी की जानी है, और उसके बाद ही निर्धारित अवधि के भीतर आरोप पत्र या शिकायत दर्ज की जा सकती है, और ऐसा करने में विफलता धारा 167 (2) सी.आर.पी.सी. के तहत डिफॉल्ट जमानत के वैधानिक अधिकार को टिगर करेगी। भारत संघ बनाम थमिशारासी एवं अन्य* के मामले में, जो कि नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेन्स एक्ट, 1985 के तहत एक मामला था, यह पाए जाने पर कि जांच पूरी नहीं हुई थी और निर्धारित अवधि के भीतर आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था, इनकार कर दिया गया। डिफॉल्ट जमानत को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना गया, और आगे यह भी माना गया कि जमानत देने पर दोहरी सीमा भी लागू नहीं होगी।

26. इसके अलावा, अशोक मुनिलाल जैन और अन्य बनाम सहायक निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय* के मामले में, यह माना गया कि सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत डिफॉल्ट जमानत का अधिकार पीएमएलए के तहत मामलों में भी अभियुक्त का एक अपरिहार्य अधिकार माना जाता था।

27. इसलिए, उपर्युक्त चर्चाओं के आलोक में, यह देखा जा सकता है कि वर्तमान सीआरपीसी के अधिनियमन से पहले प्रारंभिक रिपोर्ट दाखिल करने की प्रथा ने अब वास्तव में जांच पूरी किए बिना आरोप पत्र दाखिल करने का रूप ले लिया है, केवल डिफॉल्ट के अधिकार को खत्म करने के लिए। यदि हम मानते हैं कि जांच पूरी किए बिना आरोप पत्र दायर किया जा सकता है,

और उसका उपयोग रिमांड को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है, तो यह वास्तव में सीआरपीसी और आरोपी व्यक्तियों को दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है।

28. हमने प्रतिवादी के विद्वान वकील द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है, हालांकि, जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया उनमें से कोई भी सीआरपीसी की धारा 309 (2) के तहत रिमांड के दुरुपयोग की अनुमति नहीं देता है, अपूर्ण आरोपपत्र दाखिल करने की अनुमति नहीं देता है, वैधानिक जमानत का अधिकार का उल्लंघन करने के लिए।

29. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम सलाप सर्विस स्टेशन और अन्य^{xii} में निर्णय, प्रतिवादी द्वारा भरोसा किया गया डिफॉल्ट जमानत के संदर्भ में नहीं, बल्कि केवल धारा के तहत पात्रता के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया था। सीआरपीसी की धारा 173(8) के तहत पहले से दायर आरोप पत्र के समर्थन में और सबूत रिकॉर्ड में रखने को कहा गया है।

30. इसके अलावा, धरम पाल बनाम हरियाणा राज्य और अन्य^{xiii} का निर्णय, जिस पर प्रतिवादी ने भरोसा किया, जांच को स्थानांतरित करने के लिए संवैधानिक न्यायालयों की शक्ति को संदर्भित करता है। उक्त फैसले के पैरा 21 में कहा गया है कि धारा 173 पुलिस अधिकारी को जांच करने और जांच पूरी होने पर रिपोर्ट दर्ज करने का अधिकार देती है और धारा 173(8) सीआरपीसी आगे की जांच करने की अनुमति देती है। हालांकि, यह निर्णय डिफॉल्ट जमानत और पूरक आरोपपत्र दाखिल करने के दुरुपयोग के बारे में भी बात नहीं करता है। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि राम नारायण पोपली बनाम सीबीआई^{xiii} और राजेश रंजन यादव बनाम सीबीआई^{xiv} के फैसले ने भी वर्तमान मामले में हमारे द्वारा विचार किए जा रहे मुद्दों से निपटा नहीं है।

31. उपर्युक्त चर्चा के प्रकाश में, प्रतिवादी के लिए विद्वान वकील द्वारा भरोसा किए गए निर्णय स्पष्ट रूप से अलग-अलग हैं क्योंकि यहां विचार किए जा रहे मुद्दों पर विचार नहीं किया गया था और उक्त घोषणाओं पर उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा रखी गई निर्भरता पूरी तरह से गलत है।

32. उपर्युक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हमारे द्वारा तय किए गए मुद्दों का उत्तर इस प्रकार है:-

I. किसी मामले की जांच पूरी किए बिना, किसी गिरफ्तार आरोपी को सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत डिफॉल्ट जमानत के अधिकार से वंचित करने के लिए किसी जांच एजेंसी द्वारा आरोप पत्र या अभियोजन शिकायत दायर नहीं की जा सकती है।

द्वितीय. ऐसा आरोपपत्र, यदि किसी जांच प्राधिकारी द्वारा जांच पूरी किए बिना दायर किया जाता है, तो सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत डिफॉल्ट जमानत का अधिकार समाप्त नहीं होगा।

III. ऐसे मामलों में, ट्रायल कोर्ट गिरफ्तार व्यक्ति को डिफॉल्ट जमानत की पेशकश किए बिना अधिकतम निर्धारित समय से अधिक समय तक रिमांड पर नहीं रख सकता है।

निष्कर्ष

33. तत्काल मामले में, तथ्यों से यह स्पष्ट है कि जांच के लंबित रहने के दौरान, 60 दिनों की समाप्ति से ठीक पहले जांच एजेंसी द्वारा पूरक आरोप पत्र दायर किए गए थे, जिसका उद्देश्य पक्ष में जमा डिफॉल्ट जमानत के अधिकार को खत्म करना था। अभियुक्त। इस तथ्यात्मक स्थिति को ट्रायल कोर्ट ने नजरअंदाज कर दिया, और आरोपी को डिफॉल्ट जमानत देने के बजाय, ट्रायल कोर्ट ने जांच एजेंसी द्वारा दायर अपूर्ण आरोपपत्रों को स्वचालित रूप से स्वीकार कर लिया, और निर्दिष्ट अधिकतम अवधि से परे आरोपी की रिमांड जारी रखी। इस प्रकार, जांच एजेंसी और ट्रायल कोर्ट, कानून के आदेश का पालन करने में विफल रहे, और ऐसे तरीके से कार्य किया जो स्पष्ट रूप से मनमाना था और अभियुक्तों को दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन था।

34. पुनरावृत्ति की कीमत पर भी, हमें यह उल्लेख करना उचित लगता है कि सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत डिफॉल्ट जमानत का अधिकार केवल एक वैधानिक अधिकार नहीं है, बल्कि एक मौलिक अधिकार है जो संविधान के अनुच्छेद 21 से आता है। भारत। प्रतीत होता है कि महत्वहीन प्रक्रियात्मक औपचारिकता को इतना महत्व दिए जाने का कारण यह सुनिश्चित करना है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति राज्य की निरंकुश और मनमानी शक्ति के अधीन न हो। रिमांड और हिरासत की प्रक्रिया, अपनी व्यावहारिक अभिव्यक्तियों में, जांच प्राधिकारी और अभियुक्त के बीच शक्ति की भारी असमानता पैदा करती है। हालांकि हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि न्याय प्राप्त करने के उद्देश्य से जांच प्राधिकरण के सुचारू कामकाज के लिए गिरफ्तारी और रिमांड बेहद महत्वपूर्ण हैं, हालांकि, शक्ति असंतुलन का संज्ञान होना भी बेहद महत्वपूर्ण है। इसलिए, आरोपी व्यक्तियों के उत्पीड़न को रोकने के लिए जांच एजेंसी पर कुछ जांच और संतुलन रखना आवश्यक हो जाता है।

35. उपरोक्त निष्कर्षों और निष्कर्षों के साथ, आरोपी के पक्ष में पारित जमानत के अंतरिम आदेश को पूर्ण बना दिया गया है, और तदनुसार, वर्तमान रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

(जे कृष्ण मुरारी)
(जे सीटी रविकुमार)
नई दिल्ली;

26 अप्रैल 2023

समाप्ति नोट

- i (2021) 2 SCC 485
- ii (1980) 1 SCC 554
- iii (2017) 10 SCC 1
- iv 1959 Supp (2) SCR 316
- v भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट नं. 14, खंड-1 (1958)।
- vi भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट नं. 41 (सितंबर, 1969), पैरा. 14.19.
- vii भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट नं. 41 (सितंबर, 1969), पैरा. 14.19.
- viii (2021) 10 SCC 773
- ix (1995) 4 SCC 190
- x (2018) 16 SCC 158
- xi 1994 Supp (3) SCC 318
- xii 2016 (4) SCC 160
- xiii (2003) 3 SCC 641
- xiv (2007) 1 SCC 70

Translated By

सौम्या शेखर

न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, पटना सिटी